[2021] 7 एस. सी. आर 86

किरण देवी

बनाम्

बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड और अन्य

(सिविल अपील सं. 6149/2015)

05 अप्रैल, 2021

[अशोक भूषण, एस. अब्दुल नजीर और हेमंत गुप्ता, न्यायमुर्तिगण]

हिंदू कानूनः हिंदू संयुक्त परिवार की संपत्ति-धारण-अभिनिर्धारित यदि संपत्ति पुरुष सदस्य द्वारा अधिग्रहित की गई है या यदि उसे संयुक्त हिंदू परिवार के रूप में माना गया है तो हिंदु संयुक्त परिवार की संपति का अनुमान लगाया जा सकता है -हालांकि, किसी व्यक्ति द्वारा किराए के परसिर मे कि गई व्यवसायिक गतिविधि से ऐसी कोई धारण जुडी हुई नहीं है। एक पुरुष सदस्य ने किराए पर परिसर लिया हो, भले ही,व्यक्ति एक किरायेदार परिसर मे अपनी व्यक्तिगत क्षमता में किरायेदार है और हिंदू अविभाजित परिवार के कर्ता के रूप में नहीं है, क्योंकि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि कर्ता संयुक्त हिंदू परिवार के लिए और उसकी ओर से व्यवसाय कर रहा था-हिंदू संयुक्त हिंदू परिवार को केवल राशन कार्ड और किराए के भुगतान के आधार पर अस्तित्व में नहीं माना जा सकता है, जब तक कि इस बात का साक्ष्य न हो कि संयुक्त हिंदू परिवार के जमा निधि को किरायेदार परिसर में व्यवसाय में निवेश किया गया था-तथ्यतः पर, उच्च न्यायालय ने कहा कि किराए या राशन कार्ड का भुगतान यह साबित करता है कि किरायेदार एक संयुक्त हिंदू परिवार के व्यवसाय के रूप में व्यवसाय कर रहा था, और किरायेदारी के समर्पण को भी खारिज कर दिया-तथ्यों से पता चलेगा कि यह किरायेदारी का अनुबंध था जो वादी को दादा द्वारा विरासत मे मिला

था, जिन्होने बाद में वफ्फ बोर्ड द्वारा समर्ण कर दिया था। होटल व्यवसाय से होने वाली आय से भले ही परदादा के परिवार का पालन-पोषण कर रहे हो लेकिन इससे परिवार के अन्य सदस्य होटल व्यवसाय में उत्तराधिकारी नहीं बन पाऐंगे। किरायेदारी एक निजी व्यक्तिगत अधिकार था जो वादी के दादाजी के पास निहित था जो अधिकार मकान मालिक को सौंपने के लिए सक्षम था। उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया कि कि‍राायेदार परिसर में एक संयुक्त हिंदु परिवार का प्रतिनिधित्व कर रहा था और कर्ता विरासती अधिकारों को वक्फ बोर्ड के पक्ष में समर्पण करने में सक्षम नहीं था। फलस्वरुप वक्फ बोर्ड द्वारा अपीलकर्त्ता को किरायेदार के रुप में रखनाा गैर कानून था और इस प्रकार अपीलकर्त्ता को वाद परिसर से बेदखल करना और वादी को रिक्त कर सौंपने का निर्देश जारी करना उपयुक्त नहीं है और बाद में वफ्फ अधिनियम 1995 85, 85ए, 83 (9) द्वारा इसे खारिज कर दिया गया।

भारत का संविधानःअनुच्छेद 226 और 227-रिट याचिका - अनुच्छेद 227 के अंदर दायर याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध दायर याचिका-रिट याचिका-उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अभिनिर्धारित उच्च न्यायालय के समक्ष दायर याचिका के नामकरण का शीर्षक महत्वहीन है। यह पूरी तरह से महत्वहीन है कि इसे एक रिट याचिका के रूप में शीर्षक दिया गया है-अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका उच्च न्यायालय को अधिनियम और/या अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से नहीं रोकेगी-कुछ उच्च न्यायालयों में, अनुच्छेद 227 के तहत याचिका को रिट याचिका के रूप में और कुछ अन्य उच्च न्यायालयों में पुनरीक्षण याचिका या विविध याचिका के रूप में शीर्षक दिया गया है-तथ्यों पर, धारा की उप-धारा (9) के परन्तुक के आलोक में पारित आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए। अधिनियम के धारा 83 में, उच्च न्यायालय ने केवल अधिनियम के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया, जो केवल वक्फ न्यायाधिकरण-

वक्फ अधिनियम, 1995 धाराएँ 85, 85A, 83(9) द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच करने तक सीमित था।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1.1 वादी ने वर्ष 1996 में दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आहवान किया था। वक्फ बोर्ड और अपीलकर्ता, जिन्होंने तब वक्फ न्यायाधिकरण में मुकदमे को स्थानांतरित करने के लिए एक आवेदन दायर किया था। हालाँकि, रमेश गोबिंदराम के मामले के संदर्भ में, वक्फ ट्रिब्यूनल ने वादी द्वारा किए गए दावे के अनुसार घोषणा नहीं कर सका, लेकिन इस तरह की आपत्ति को वक्फ बोर्ड या अपीलकर्ता द्वारा जारी की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि आदेश सिविल कोर्ट द्वारा उनके कहने पर पारित किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा भी इसे बरकरार रखा गया था। इस प्रकार इस तरह के आदेश ने अंतर-पक्षों को अंतिम रूप दे दिया है। एक ही बार में पक्षकारों को अनुमोदन और खंडन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है वक्फ ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र के आदेश को विवादित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि पक्षों ने दीवानी अदालत के आदेश को स्वीकार कर लिया था और ट्रिब्यूनल के समक्ष मुकदमा चलाया था। यह ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें वादी ने वक्फ ट्रिब्यूनल के अधिकार क्षेत्र को लागू किया हो। [पारा 13] [97-एफ-एच; 98 ए-बी]

1.2 यह वादी द्वारा अधिकारिता प्रदान करना नहीं है। स्वैच्छिक रूप से लेकिन एक न्यायिक आदेश के आधार पर जो अब पक्षों के बीच अंतिमता प्राप्त कर चुका है। वक्फ ट्रिब्यूनल ने तदनुसार मुकदमे का फैसला किया। अपीलार्थी के लिए यह आपत्ति उठाने के लिए खुला नहीं है कि वक्फ ट्रिब्यूनल के पास तत्काल मामले के तथ्यों में मुकदमे पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। [पैरा 14] [98-सी-डी]

रमेश गोविंदराम (मृतक) द्वारा एल.आर.एस. बनाम सुग्रा हुमायूं मिर्जा वक्फ (2010) 8 एस. सी. सी. 726 [2010] 10 एस. सी. आर. 945-संदर्भित।

1.3 वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 83 की उप-धारा (9) के परंतुक के अवलोकन से पता चलता है कि यह उच्च न्यायालय को किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से संबंधित अभिलेखों की मांग करने और उनकी जांच करने की शक्ति प्रदान करता है जिसे न्यायाधिकरण ने निर्धारित किया ताकि न्यायाधिकरण इस तरह के निर्धारण की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में खुद को संतुष्ट करने के लिए है। वास्तव में, वैधानिक प्रावधान इस सिद्धांत की स्वीकृति है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य के संदर्भ में कम नहीं किया जा सकता है। [पारा 18] [99-एफ-एच]

साधना लोध बनाम राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड और अन्य (2003) 3 एससीसी 524 [2003] 1 एससीआर 567-प्रतिष्ठित। एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य। (1997) 3 एससीसी 261[1997] 2 एससीआर 1186; मो. वसीउर रहमान और अन्र बनाम बिहार राज्य और अन्य। 2017 का सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 14/622, दिनांक 25.04.2018; राधे श्याम और अन्य बनाम छबी नाथ और अन्य (2015) 5 एससीसी 423 [2015] 3 एससीआर 197; सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय और अन्य (2003) 6 एससीसी 675 [2003] 2 पूरक एस. सी. आर. 290 से संदर्भित किया गया

1.4 जब उच्च न्यायालय के समक्ष वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश के खिलाफ याचिका दायर की जाती है, तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है। इसलिए, यह पूरी तरह से असंगत है कि रिट याचिका को एक याचिका आवेदन के रूप में शीर्षक दिया गया था.यह देखा जा सकता है कि कुछ उच्च न्यायालयों में, अनुच्छेद 227 के तहत याचिका को रिट याचिका के रूप में, कुछ

अन्य उच्च न्यायालयों में पुनरीक्षण याचिका के रूप में और कुछ अन्य में विविध याचिका के रूप में शीर्षक दिया गया है। तथापि, पारित आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (9) के परंतुक के आलोक में, उच्च न्यायालय ने केवल अधिनियम के तहत अधिकारिता का प्रयोग किया। उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच करने तक सीमित है। उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (9) के प्रावधान के तहत प्रदत्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर याचिका के शीर्षक का नामकरण महत्वहीन है। इसलिए, अनुच्छेद 226 के तहत सूचीबद्ध याचिका उच्च न्यायालय को अधिनियम और/या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से नहीं रोकेगी। अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका या अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में कार्यवाही का नामकरण पूरी तरह से अप्रासंगिक और सारहीन है। [पारा 20,21 और 23] [101-डी-जी; 103-बी]

पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं अन्य बनामविशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य (1998) 5 एससीसी 749 [1997] 5 पूरक एस. सी. आर. 12-पर निर्भर।

अहमदाबाद नगर निगम बनाम बेन हीराबेन मणिलाल (1983) 2 एस. सी. सी. 422 [1983] 2 एस. सी. आर. 676 द्वारा संदर्भित।

1.5 वादी ने दलील दी है कि जब वादी के पिता नौकरी में शामिल हुए, तो दुकान नौकरों के माध्यम से चलाई जा रही थी और वादी ने 1988 से होटल चलाना शुरू कर दिया था। इसके बाद, होटल की आय के प्रबंधन और लेखांकन को लेकर विवाद पैदा हो गए और होटल कई वर्षों तक बंद रहा। उच्च न्यायालय ने कहा कि संयुक्त परिवार का अस्तित्व 2.4.1949 पर जारी राशन कार्ड और 1947-1955 अवधि के लिए किराए के भुगतान से

स्थापित होता है कि परिसर संयुक्त परिवार को पट्टे पर दिया गया था। उच्च न्यायालय ने किरायेदारी के समर्पण को भी इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह अन्य उत्तराधिकारियों की सहमति के बिना था। इसलिए, भले ही किसी पुरुष सदस्य ने किराए पर परिसर लिया हो, वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में किरायेदार है न कि हिंदू के कर्ता के रूप में। अविभाजित परिवार के पास इस बात का कोई सबूत नहीं था कि कर्ता संयुक्त हिंदू परिवार के लिए उसकी ओर से व्यवसाय कर रहा था। उच्च न्यायालय ने 2.12.1949 पर जारी राशन कार्ड के अवलोकन से संयुक्त परिवार के अस्तित्व का अनुमान लगाया है, जिसमें वादी के परदादा के भाई को कर्ता कहा गया था। हिंदू संयुक्त हिंदू परिवार को केवल राशन कार्ड के आधार पर अस्तित्व में नहीं माना जा सकता है जब तक कि इस बात का सबूत न हो कि संयुक्त हिंदू परिवार के धन को किरायेदार परिसर में व्यवसाय में निवेश किया गया था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने कानून की एक बुनियादी त्रुटियां की और यह तथ्य कि किराया या राशन कार्ड का भुगतान यह साबित करता है कि किरायेदार एक संयुक्त हिंदू परिवार के रूप में व्यवसाय कर रहा था यदि संपत्ति का अधिग्रहण पुरुष सदस्य द्वारा किया गया है या इसे संयुक्त हिंदू परिवार माना गया है तो हिंदू संयुक्त पारिवारिक संपत्ति की अवधारणा की जा सकती है। लेकिन ऐसी कोई अवधारणा एक किरायेदार परिसर में एक व्यक्ति द्वारा की गई व्यावसायिक गतिविधि से जुड़ा नहीं होता है। [पारा 27-29 और 31] [104-ई; जी.एच.; 105-ए; 106-सी.डी.; 107-एफ.जी.]

1.6 अभिलेख पर तथ्यों के अवलोकन से पता चलता है कि यह उनके परदादा द्वारा किया गया किरायेदारी का अनुबंध था। भले ही परदादा होटल व्यवसाय से उत्पन्न आय से परिवार का पालन-पोषण कर रहे हों, लेकिन यह परिवार के अन्य सदस्यों को होटल व्यवसाय में उत्तराधिकारी नहीं बनाएगा। यह किरायेदारी का अनुबंध था जो वादी के दादा को विरासत में मिला था जिन्होंने बाद में इसे वक्फ बोर्ड के पक्ष में सौंप दिया था। किरायेदारी एक व्यक्तिगत अधिकार था जो वादी के दादा के पास निहित था जो सक्षम था इसे मकान

मालिक को सौंप दें। उच्च न्यायालय ने कानूनी रूप से यह पूर्वानुमान करते हुए गलती की क्योंकि दादा एक किरायेदार थे, इसलिए किरायेदारी एक संयुक्त पारिवारिक संपत्ति है। किरायेदारी का अनुबंध संयुक्त हिंदू पारिवारिक व्यवसाय की तुलना में एक स्वतंत्रता अनुबंध है। [पारा 32] [107-जी-एच; 108-ए-बी]

1.7 वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, वादी के परदादा के भाई या वादी के दादा द्वारा दिए गए किराए का भुगतान है। किराए का भुगतान इस तथ्य का संकेत नहीं है कि होटल व्यवसाय संयुक्त हिंदू परिवार द्वारा किया जाता था। इस प्रकार, केवल परदादा या वादी के दादा द्वारा किराए का भुगतान करने से यह कोई धारणा नहीं बनती है कि यह संयुक्त हिंदु परिवार का व्यवसाय था। उच्च न्यायालय ने बिना किसी कानूनी या तथ्यात्मक आधार पर ऐसा मानने में स्पष्ट रूप से गलती की है। [पारा 33 और 35] [108-बी-सी; 110-ए-बी]

1.8 भले ही वादी के भतीजे को किराए के परिसर में होटल व्यवसाय चलाने के दौरान संयुक्त हिंदू परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता है, किरायेदारी के समर्पण के लिए कर्ता अधिनियम के बारे में सवाल संयुक्त हिंदू परिवार के लाभ के लिए था। [पारा 36] [110-बी-सी]

मुल्ला द्वारा हिंदू कानून 22 वां संस्करण-संदर्भित।

1.9 वादी ने दलील दी कि होटल कई वर्षों से बंद था, इस प्रकार, मासिक किराया देने का दायित्व वादी के कर्ता-भतीजे पर बढ़ता रहा। उच्च न्यायालय ने पाया कि समर्पण पत्र विश्वसनीय या मान्य नहीं था। समर्पण पत्र के निष्पादक ने इस तरह के समर्पण पत्र को स्वीकार किया है लिखित बयान और डी. डब्ल्यू.-5 के गवाह के रूप में पेश होते समय। मुतवल्ली ने लिखित बयान में और कटघरा में डी. डब्ल्यू.-10 के रूप में उपस्थित होते हुए आत्मसमर्पण पत्र को भी स्वीकार कर लिया है। केवल इस कारण से कि अनुवादित प्रति में हस्ताक्षर उर्दू प्रति के साथ मेल नहीं खाते हैं, समर्पण पत्र को अविश्वसनीय मानने के लिए

पर्याप्त नहीं है क्योंकि अनुवाद गलत हो सकता है, लेकिन दस्तावेज़ की शुद्धता पर विवाद नहीं हुआ है। निष्पादक या स्वीकारकर्ता द्वारा। वादी, जो इस तरह के लेन-देन में पक्षकार नहीं है, उनके बयान के आधार पर उक्त दस्तावेज़ को अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता था। यह कहना एक बात है कि दस्तावेज़ अविश्वसनीय है और दूसरा यह कहना कि दस्तावेज़ वादी को बाध्य नहीं करता है। यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि दस्तावेज़ को वक्फ बोर्ड द्वारा वैध रूप से साबित और स्वीकार किया गया था। इस प्रकार, किरायेदारी के समर्पण का कार्य संयुक्त हिंदू परिवार के लाभ के लिए था। [पारा 37] [111-बी, सी-ई]

1.10 उच्च न्यायालय का आदेश दर्ज किए गए कारणों के लिए उपयुक्त नहीं है और इसे दरकिनार कर दिया गया है और वक्फ न्यायाधिकरण का आदेश बहाल कर दिया गया है। [पारा 38] [111-एफ]

पंजाब वक्फ बोर्ड बनाम शाम सिंह हरिके (2019) 4 एससीसी 698:[2019] 2 एससीआर 61; चंदावरकर सीता रत्न राव बनाम आशालता एस. गुरम (1986) 4 एससीसी 447:[1986] 3 एस. सी. आर. 866; गणपत लाढ़ा बनाम शशिकांत विष्णु शिंदे (1978) 2 एस. सी. सी. 573:[1978] 3 एससीआर 198; राम अवलांब और अन्य बनामजनता शंकर और अन्य। ए. आई. आर. 1969 ऑल। 526; मध्य प्रदेश के आयकर आयुक्त बनाम सर हुकुमचंद मन्नालाल एंड कंपनी (1970) 2 एस. सी. सी. 352:[1971] 1 एससीआर 646; पी.के.पी.एस. पिचप्पा चेट्टियार और अन्य बनामचोकलिंगम पिल्लई और अन्य। ए. आई. आर. 1934 प्रिवी काउंसिल 192; जी. नारायण राजू (मृत) प्रतिनिधि बनाम जी. चामाराजू और अन्य। एआईआर 1968 एससी 1276:[1968] एससीआर 464; थाना साईराम और अन्य बनामथाना रामा राव पिस्सी और अन्य। (2004) 11 एससीसी 320:[2004] 2 एस. सी. आर. 98-द्वारा संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

[2019] 2 एससीआर 61 को पारा 9(1) से संदर्भित किया गया है

[2003] 1 एससीआर 567 को पारा 9(2) से संदर्भित किया गया है

[1986] 3 एससीआर 866 को पारा 9(3) से संदर्भित किया गया है

[1978] 3 एससीआर 198 को पारा 9(3) से संदर्भित किया गया है

ए. आई. आर. 1969 ऑल। 526 को पारा 12 से संदर्भित किया गया है

[1971] 1 एससीआर 646 को पारा 12 से संदर्भित किया गया है

[2010] 10 एससीआर 945 को पारा 13 से संदर्भित किया गया है

[1997] 2 एससीआर 1186 को पारा 18 से संदर्भित किया गया है

[2015] 3 एससीआर 197 को पारा 19 से संदर्भित किया गया है

[2003] 2 पूरक एससीआर 290 को पारा 19 से संदर्भित किया गया है .

[1983] 2 एससीआर 676 को पारा 21 से संदर्भित किया गया है

[1997] 5 पूरक एससीआर 12 को पारा 22 पर निर्भर किया गया .

ए. आई. आर. 1934 प्रिवी काउंसिल 192 को पारा 33 से संदर्भित किया गया है

[1968] एससीआर 464 को पारा 33 से संदर्भित किया गया है

[2004] 2 एससीआर 98 को पारा 34 से संदर्भित किया गया है

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 6149/2015

सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 1894/2012 में पटना में उच्च क्षेत्राधिकार के न्यायिक निर्णय और आदेश दिनांक 06.02.2013 से।

शांतनु सागर, प्रभात रंजन, जीवेश प्रकाश, सुश्री दिव्या मिश्रा, अनिल कुमार,अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता।

सुभ्रो सान्याल, उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय द्वारा दिया गया था

हेमंत गुप्ता, न्यायमूर्ति

1. वर्तमान अपील में पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार द्वारा दिनांक 6.2.2013 को पारित एक आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें प्रत्यर्थी नं. 4 द्वारा इसमें दायर एक याचिका आवेदन को यह अभिनिर्धारित करते हुए स्वीकार किया गया था कि प्रश्नगत परिसर में किराएदार एक संयुक्त हिंदु परिवार का प्रतिनिधित्व कर रहा था। यह कि कर्ता प्रत्यर्थी नं. १-बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड के पक्ष में किरायेदारी के अधिकारों को आत्मसमर्पण करने के लिए सक्षम नहीं था और परिणामस्वरूप अपीलकर्ता को वक्फ बोर्ड द्वारा किरायेदार के रूप में शामिल करना अवैध था.तदनुसार, अपीलार्थी को वाद परिसर से बेदखल करने और वादी को खाली कब्जा सौंपने के लिए एक निर्देश जारी किया गया था।

2. वादी ने सक्षम सिविल न्यायालय के समक्ष घोषणा के लिए एक वाद दायर किया था जिसमें कहा गया था कि वह वाद परिसर में किरायेदार है और मासिक किराये के भुगतान पर वाद परिसर में किरायेदार के रूप में जारी रहने का हकदार है.इस तरह की घोषणा का आधार यह था कि वादी के परदादा, राम शरण राम, अपने भाई राम सेवक राम से पहले मर गए थे, जो निःसंतान मर गए थे और उनकी विधवा उनसे पहले मर गई थी.राम सेवक राम वक्फ बोर्ड के परिसर में होटल का संयुक्त पारिवारिक व्यवसाय कर रहा

था। बढ़ती उम्र के कारण, उन्होंने होटल व्यवसाय का कब्जा अपने भतीजे देवेंद्र प्रसाद सिन्हा, वादी के दादा को सौंप दिया। वादी के दादा संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य के रूप में किरायेदारी में सफल हुए। उसकी मृत्यु के बाद, प्रतिवादी नं. १ से ३ संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्यों के रूप में किरायेदारी करने में सफल रहा.यह दुकान देवेंद्र प्रसाद सिन्हा पुत्र सुरेंद्र कुमार द्वारा चलाई जा रही थी, जब वादी के दादा बीमार हो गए। वादी के पिता, सुरेंद्र कुमार ने वक्फ बोर्ड को किराया देना शुरु किया। हालांकि, सुरेंद्र कुमार बाद में सेवा में शामिल हो गए और होटल नौकरों के माध्यम से चलाया जा रहा था। वादी ने 1988 से होटल चलाना शुरू किया था। प्रबंधन को लेकर विवाद के कारण होटल को बंद कर दिया गया था और यह कई वर्षों तक बंद रहता है। यह वादी है जो प्रश्नगत परिसर में होटल व्यवसाय को फिर से शुरू करना चाहता था और इस प्रकार उसने दुकान की वंशानुगत किरायेदारी को जारी रखने के लिए वक्फ बोर्ड को उसके नाम पर कर्ता के रूप में सूचित किया.

3. वाद हेतुक 21.3.1996 को उत्पन्न हुआ, जब वादी के दादा ने अन्य लोगों के साथ वाद परिसर का ताला तोड़ दिया और दुकान में उपलब्ध सामान को हटा दिया। वादी के पिता रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस के पास गए, लेकिन उन्होंने मामला दर्ज करने से इनकार कर दिया। इसके बाद पटना के मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी की अदालत में एक शिकायत दायर की गई, जो लंबित है। बाद में, वादपत्र में संशोधन किया गया और वर्तमान अपीलकर्ता को प्रतिवादी नं. ५ के रूप में अभियोजित किया गया, यह आरोप लगाते हुए कि वक्फ बोर्ड द्वारा उसके पक्ष में दिया गया पट्टा जाली, मनगढ़ंत, गैर-दिनांकित और कपटी कागज है.

4. वक्फ बोर्ड ने अपने लिखित बयान में इस बात पर जोर दिया कि मोहम्मद सलीमुद्दीन जानकी बीबी वक्फ एस्टेट नंबर 465 बी का विधिवत नियुक्त मुतवल्ली था और

अपीलकर्ता प्रबंधन समिति द्वारा विधिवत शामिल किरायेदार है। यह भी दलील दी गई कि प्रतिवादियों को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि राम सेवक राम के पास कोई होटल का व्यवसाय था, लेकिन वह देवेन्द्र प्रसाद सिन्हा वाद परिसर मैं किरायेदार था, जिसने दिनांक ३१. ५. १९९६ के एक लिखित पत्र के माध्यम से मोहम्मद सलीमुद्दीन के पक्ष में अपने किरायेदारी अधिकारों को आत्मसमर्पण कर दिया था और उसके बाद परिसर का खाली कब्जा सौंप दिया था.इसके बाद, अपीलार्थी को ५. ६. १९९६ को रु. ६००/- के मासिक किराए पर किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था.यह यहां अपीलार्थी द्वारा दायर लिखित बयान में भी इंगित किया गया था.प्रतिवादी नं. १ और २ की ओर से दाखिल एक अलग लिखित बयान में, यह दावा किया गया कि प्रतिवादी नं. १ मकान मालिक अर्थात् वक्फ के मुतवल्ली को किराए का भुगतान कर रहा था और उसने ३१. ५. १९९६ को दुकान परिसर को मकान मालिक/मुतवल्ली के हवाले कर दिया था क्योंकि वह बुढ़ापे के कारण व्यवसाय जारी रखने में असमर्थ था.इस बात से इंकार किया गया कि वादी और उसके पिता प्रतिवादी नं. १ द्वारा ताले खोलने के कारण एफआईआर दर्ज कराने गए थे.यह दावा किया गया कि वादी के पास २१. ३. १९९६ पर दुकान का दावा करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि कथित दुकान न तो उसके कब्जे में थी और न ही उसके ताला और चाबी उसके अधीन था।

5. अपीलकर्ता और वक्फ बोर्ड ने वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 85 और 85ए के प्रावधानों के अनुसार वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय के लिए वाद के हस्तांतरण के लिए सिविल न्यायालय के समक्ष आवेदन दायर किए। इस प्रकार विद्वत मुंसिफ द्वारा वाद ४. २. २००९ को अंतरित किया गया.अधिकरण को वाद के हस्तांतरण के इस तरह के आदेश को वादी द्वारा एक पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। उक्त पुनरीक्षण तुच्छ पाया गया और 19.05.1999 को 3000/- रुपए की ज के साथ खारिज कर दिया गया।

6. पक्षकारों ने वक्फ अधिकरण के समक्ष निम्नलिखित मुद्दों पर सुनवाई के लिए गयेः

"(i) क्या देवेंद्र प्रसाद संयुक्त पारिवारिक व्यवसाय कर रहे थे?

(ii) क्या संयुक्त परिवार व्यवसाय के कर्ता के रूप में देवेंद्र प्रसाद को संयुक्त परिवार व्यवसाय को आत्मसमर्पण करने का प्राधिकार मिला है?

(iii) क्या देवेंद्र प्रसाद ने संयुक्त परिवार व्यवसाय या संयुक्त परिवार व्यवसाय के परिसर को आत्मसमर्पण कर दिया?

(iv) क्या वादी किसी अन्य राहत का हकदार है?"

7. देवेंद्र प्रसाद सिन्हा (प्रतिवादी नं. १) प्रतिवादी गवाह-५ के रूप में पेश हुए जबकि दिलीप कुमार (प्रतिवादी नं. २) प्रतिवादी गवाह- १४ के रूप में वक्फ न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित हुए.कथित गवाहों ने अपने रुख का समर्थन किया कि किरायेदारी 31.5.1996 को आत्मसमर्पण कर दी गई थी.विद्वत न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी नं. १ एक होटल व्यवसाय चला रहा था और बाद में उसने दुकान मुतावल्ली को सौंप दी थी.कागजों पर कब्जा सौंपने के लिए लिखा गया लेख गवाह द्वारा स्वीकार कर लिया गया था.यह भी पाया गया कि ऐसा कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य नहीं था कि देवेंद्र प्रसाद सिन्हा ने उस परिसर को आत्मसमर्पण कर दिया था जहां वह संयुक्त परिवार व्यवसाय कर रहे थे। न्यायाधिकरण ने कहा कि वादी ने यह भी नहीं कहा कि देवेंद्र प्रसाद एक संयुक्त परिवार के व्यवसाय का प्रबंधन कर रहे थे और इस प्रकार इस तरह के सुझाव के अभाव में यह विश्वास करना मुश्किल था या असंभव था कि देवेंद्र प्रसाद एक संयुक्त परिवार के व्यवसाय का प्रबंधन कर रहे थे। नतीजतन, मुकदमा खारिज कर दिया गया।

8. उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश के विरुद्ध एक याचिका आवेदन में अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसर राम सेवक राम को दिया गया था, जिसने जनवरी, 1960 में अपनी मृत्यु तक उक्त परिसर में संयुक्त परिवार होटल व्यवसाय किया था। इसके बाद, प्रतिवादी नं. १ कर्ता बन गया और वाद परिसर सहित संयुक्त पारिवारिक व्यवसाय में सफल हुआ.यह पाया गया कि वह संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों की सहमति के बिना 31.5.1996 को मुतावल्ली के पक्ष में किरायेदारी का आत्मसमर्पण नहीं कर सकता था.नतीजतन, न्यायाधिकरण के फैसले को रद्द कर दिया गया और अपीलकर्ता को वाद परिसर से बेदखल करने और वाद परिसर का खाली कब्जा वादी को सौंपने के लिए एक निर्देश भी जारी किया गया था.

9. अपीलार्थी के विद्वत वकील ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैंः

(1) इस न्यायालय के एल.आर.एस. के माध्यम से रमेश गोविंद राम (मृत) बनाम सुगरा हूमायूं मिर्जा वक्फ में पारित निर्णय को ध्यान में रखते हुए वादी द्वारा दायर वाद को ग्रहण करने के लिए अधिकरण के पास कोई अधिकारिता नहीं थी। उपर्युक्त निर्णय के बाद, 2013 के केन्द्रीय अधिनियम संख्या 27 द्वारा वक्फ अधिनियम में संशोधन किया गया। इस अदालत ने हाल ही में पंजाब वक्फ बोर्ड बनाम शाम सिंह हरिके मामले में अधिनियम में संशोधन पर विचार किया है, जिसमें संशोधन से पहले संस्थित की गई कार्यवाहियां अधिनियम के असंशोधित उपबंधों के अनुसार जारी रहेंगी। इसलिए वादी को किरायेदार के रुप में घोषित करने के लिए एक मुकदमा वक्फ न्यायाधिकरण के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं था क्योंकि कानून को विरुद्घ कोई निबंधन नहीं था और सहमति से वक्फ न्यायाधिकरण को अधिकार क्षेत्र नहीं मिलेगी जो निर्णयों के मद्देनजर नहीं था।

(2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका के माध्यम से वक्फ अधिकरण के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परन्तुक के अनुसार केवल पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी जा सकती है। अपीलार्थी के विद्वत वकील साधना लोध बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं एक अन्य और पटना उच्च न्यायालय के मोहम्मद वसीउर रहमान और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य के फैसले पर निर्भर करते हैं।

(3) उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन किसी याचिका में तथ्यों की पुनः समीक्षा नहीं कर सकता था। उच्च न्यायालय ने वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों को अवैध रूप से रद्द कर दिया है। यह चंदावरकर सीता रत्न राव बनाम आशालता एस. गुरम मामले पर आधारित था। यह भी तर्क दिया गया कि संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत याचिका में किरायेदारी के मामले में किसी भी हस्तक्षेप की अनुमति नहीं है। गणपत लाधा बनाम शशिकांत विष्णु शिंदे का संदर्भ। उपर्युक्त प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए दिया गया।

(4) प्रतिवादी नं. १ द्वारा किरायेदार परिसर के कब्जे का समर्पण संयुक्त हिंदू परिवार के व्यवसाय का नहीं था, बल्कि किरायेदारी का था, जो वादी द्वारा स्वीकार किए जाने के बावजूद बड़ी संख्या में वर्षों से नहीं किया गया था।

(5) यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रतिवादी नं. 1 संयुक्त हिंदू परिवार का कर्ता था, तो उसे अन्य सहदायिकों की सहमति के बिना किराएदारी को आत्मसमर्पण करने का अधिकार था क्योंकि इस तरह का आत्मसमर्पण अन्य

बातों के साथ-साथ परिवार के लाभ के लिए था क्योंकि पिछले कई वर्षों से कोई व्यवसाय नहीं किया गया था।

10. दूसरी ओर, श्री सान्याल, वादी के विद्वत वकील ने तर्क दिया कि यह नामकरण कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद २२६ के तहत उच्च न्यायालय की अधिकारिता का उपयोग किया गया है या अधिनियम की धारा ८३ की उपधारा (९) के परन्तुक के अनुसार अधिकारिता का उपयोग किया गया है, असंगत है क्योंकि अन्य मामलों में अधिकारिता उच्च न्यायालय की है.अधिकारिता के प्रयोग में नामकरण उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवैध या अवांछित या क्षेत्राधिकार से परे नहीं बनाता है। पेप्सी फूड्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम विशेष न्यायिक दंडाधिकारी और अन्य का संदर्भ दिया गया।

11. आगे यह तर्क दिया गया कि राम सेवक राम को किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था और इसलिए, वादी को किरायेदारी में जन्म से अधिकार है जो अन्य सहदायिकों की सहमति के बिना तत्कालीन कर्ता, प्रतिवादी नं. १ द्वारा आत्मसमर्पण नहीं किया जा सकता था.चूंकि कब्जा-किरायेदारी अधिकारों के अवैध समर्पण के परिणामस्वरूप अपीलार्थी को सौंपा गया था, इसलिए, उच्च न्यायालय का आदेश न्यायसंगत और उचित है.

12. श्री सान्याल ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ द्वारा राम अवलम्ब और अन्य बनामजटा शंकर और अन्य मामले में दिये गए निर्णय को संदर्भित कर यह तर्क दिया गया है कि संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब संपत्ति के अंतरण के संबंध में हिंदुओं की स्वीय विधि अभिधारी संपत्ति पर भी लागू होती है। इसके एक निर्णय का भी संदर्भ लिया गया। इस न्यायालय के द्वारा आयकर आयुक्त, मध्य प्रदेश बनाम सर हुकुमचंद मन्नालाल एंड कंपनी के मामले में पारित निर्णय को भी संदर्भित किया गया जिसमें हिंदू अविभाजित परिवा के सदस्य किसी अजनबी के साथ अनुबंध कर सकता है।

13. हमने पक्षकारों के विद्वत वकील को सुना है और पाया है कि इस स्तर पर अपीलकर्ता के लिए इस प्रश्न पर विवाद करना संभव नहीं है कि विद्वत मुंसिफ के समक्ष दायर वाद को वक्फ न्यायाधिकरण को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था.वादी ने वर्ष 1996 में सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आहवान किया था। यह वक्फ बोर्ड है और अपीलकर्ता जिसने बाद में वाद को वक्फ न्यायाधिकरण में स्थानांतरित करने के लिए एक आवेदन दायर किया। हालांकि, रमेश गोविंदराम के संदर्भ में, वक्फ न्यायाधिकरण वादी द्वारा दावा की गई घोषणा को मंजूरी नहीं दे सकता है, लेकिन इस तरह की आपत्ति को न तो वक्फ बोर्ड द्वारा और न ही अपीलकर्ता द्वारा उठाने की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि उनके अनुरोध पर सिविल कोर्ट द्वारा आदेश पारित किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा भी इसे बरकरार रखा गया था। इस प्रकार इस तरह के आदेश ने अंतिम रूप ले लिया है। पार्टियों को एक ही सांस में अनुमोदन और तिरस्कार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस आदेश को कि वक्फ न्यायाधिकरण के पास अधिकार क्षेत्र है, विवादित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि पक्षों ने दीवानी अदालत के आदेश को स्वीकार कर लिया था और न्यायाधिकरण के समक्ष मुकदमा चला था। यह ऐसी स्थिति नहीं है जहां वादी ने वक्फ न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र का आहवान किया हो।

14. अपीलार्थी के विद्वत वकील द्वारा उठाया गया तर्क कि कानून के खिलाफ कोई विबंध नहीं था क्योंकि सहमति प्राधिकरण को अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकती थी जो मूल रूप से अधिकारिता नहीं थी। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि न्यायाधिकरण का निर्णय क्षेत्राधिकार के बिना था.यह ध्यान देने योग्य है कि वादी ने स्वयं सिविल न्यायालय के समक्ष कार्यवाही दायर की थी, लेकिन अपीलार्थी के साथ-साथ वक्फ बोर्ड द्वारा भी इस पर आपत्ति की गई थी.इस प्रकार, यह वादी द्वारा स्वेच्छा से क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं किया गया है, बल्कि एक न्यायिक आदेश के आधार पर है जो अब पक्षकारों के बीच अंतिम हो गया है। तदनुसार वाद का निर्णय वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा किया गया हम नहीं पाते कि अपीलकर्ता

यह आपत्ति उठाने के लिए स्वतंत्र है कि वर्तमान मामले के तथ्यों में वाद को ग्रहण करने का वक्फ न्यायाधिकरण के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है.इसलिए, हमें अपीलार्थी के विद्वत वकील द्वारा उठाए गए पहले तर्क में कोई योग्यता नहीं मिलती है.

15. दूसरे तर्क को समझने के लिए, अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) और धारा 83 के सुसंगत उपबंधों को नीचे उद्धृत किया गया हैः

> “83. अधिकरणों आदि का गठन-(1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के अधीन, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, किसी वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण, किरायेदार की बेदखली या पट्टेदार और ऐसी संपत्ति के पट्टेदार के अधिकारों और दायित्वों के अवधारण के लिए ऐसे न्यायाधिकरणों की स्थानीय सीमाओं और अधिकारिता को परिभाषित करेगी।
>
> xx xx xx
>
> (9) न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए या किये गए किसी निर्णय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी, चाहे वह अंतरिम हो या अन्यथा:
>
> बशर्ते कि उच्च न्यायालय स्वप्रेरणा से या बोर्ड के आवेदन पर या व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से संबंधित अभिलेख मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है जो न्यायाधिकरण द्वारा ऐसे अवधारण की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के उद्देश्य से अवधारित किया गया है और ऐसे अवधारण की पुष्टि, प्रतिस्थापन या उपांतरण कर सकता है या ऐसा अन्य आदेश पारित कर सकता है जो वह उचित समझे।"

16. साधना लोध मामले में अपीलार्थी द्वारा निर्दिष्ट निर्णय और वसीउर रहमान के मामले में पटना उच्च न्यायालय के आदेश को वर्तमान अपील के तथ्यों पर लागू नहीं किया गया है। साधना लोध एक निर्णय है जिसमें मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के निर्णय को एक याचिका आवेदन के माध्यम से चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याचिका आवेदन तब अनुरक्षणीय नहीं थी जब एक कानून के तहत एक वैकल्पिक उपचार प्रदान किया जाता है। इसलिए, उक्त निर्णय उपलब्ध कराई गई अपील के उपचार को ध्यान में रखते हुए याचिका अधिकारिता की उपलब्धता से संबंधित है। वर्तमान मामले में, कानून में वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (9) के प्रावधान के तहत उपचार का प्रावधान है। ऐसा उपचार केवल उच्च न्यायालय के समक्ष है।

17. मोहम्मद वसीउर रहमान में निर्णय इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश को एक याचिका आवेदन के माध्यम से चुनौती दी गई थी। याचिका न्यायालय के समक्ष यह आपत्ति उठाई गई थी कि एक वैकल्पिक वैधानिक उपाय उपलब्ध है, इसलिए याचिका आवेदन विचारणीय नहीं थी। विद्वत एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत एक याचिका अनुरक्षणीय नहीं थी, लेकिन याचिकाकर्ताओं को अधिनियम की धारा 83 की उप-धारा (9) के परंतुक के संदर्भ में अधिकारिता का उपयोग करने के लिए स्वतंत्रता दी गई थी, उक्त निर्णय नहीं प्रदर्शित करता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत उठाये गये कोई भी तर्क अधिनियम की धारा (9) के प्रावधान के तहत आवेदन (याचिका) माना जा सके इसलिए उक्त निर्णय भी वर्तमान अपील में प्रश्नगत विचार के लिए प्रासंगिक नहीं है।

18. अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परन्तुक के परिशीलन से पता चलता है कि यह उच्च न्यायालय को किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से संबंधित

अभिलेख मंगाने और प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान करता है, जो न्यायाधिकरण द्वारा ऐसे अवधारण की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए अवधारित किया गया है। वास्तव में, कानूनी प्रावधान इस सिद्धांत को स्वीकार करता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य की शर्तों पर उच्च न्यायालय के अधिकारिता में कटौती नहीं की जा सकती है, संबंधित सार इस प्रकार हैः

> "90. हम पहले उच्च न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति के अपवर्जन के मुद्दे पर विचार कर सकते हैं। हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के संबंध में अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को पूर्णतया अपवर्जित नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, यह अभिनिर्धारित करना कि ऐसे सभी विनिश्चय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के अधीन होंगे जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर संबंधित न्यायाधिकरण आता है, दो प्रयोजनों की पूर्ति करेगा। संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालयों में निहित विधायी कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को बचाते हुए, यह सुनिश्चित करेगा कि न्यायाधिकरण में न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया के माध्यम से तुच्छ दावों को फिल्टर किया जाए। उच्च न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर एक तर्कसंगत निर्णय का लाभ भी मिलेगा जो मामले पर अंतिम निर्णय लेने में उसके लिए उपयोगी होगा।
>
> 91. हमने पहले ही यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायाधिकरणों के

निर्णयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने में सक्षम हैं। आर. के. जैन [(1993) 4 एस. सी. सी. 119:1993 एससीसी (एल एंड एस) 1128:(1993) 25 एटीसी 464) के मामले में इन तथ्यों को ध्यान में रखने के पश्चात्, यह सुझाव दिया गया था कि विधि के प्रश्नों पर न्यायाधिकरण से उस उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ में अपील करने की संभावना का अनुसरण किया जाए जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता में न्यायाधिकरण आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुझाव के अनुसरण में कोई अनुवर्ती कार्रवाई नहीं की गई है। इस तरह के उपाय से स्थिति में काफी सुधार होता। उपरोक्त दोनों तर्कों को ध्यान में रखते हुए, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि न्यायधिरणों के सभी निर्णय, चाहे वे संविधान के अनुच्छेद 323-क या अनुच्छेद 323-ख के अनुसरण में बनाए गए हों, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष, जिसकी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर विशेष न्यायाधिकरण आता है, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की याचिका अधिकारिता के अधीन होंगे।"

19. एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने राधे श्याम एवं एक अन्य बनाम छबीनाथ एवं अन्य में यह अभिनिर्धारित किया कि सूर्य देव राय बनाम राम चन्द्र राय और अन्य के निर्णय के पैरा 25 में की गई टिप्पणियां अच्छी विधि नहीं हैं। सूर्य देव राय वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सिविल न्यायालय के आदेश को अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में चुनौती दी जा सकती है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के बीच का अंतर लगभग समाप्त हो गया है। इस न्यायालय ने राधे श्याम ने अभिधारित किया:

"27. हमारा विचार है कि सिविल न्यायालयों के न्यायिक आदेश अनुच्छेद 226 के अधीन उत्प्रेषण की याचिका के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। हम निर्देश

करने वाली पीठ के इस विचार [राधे श्याम बनाम छबि नाथ, (2009) 5 एससीसी 616] से भी सहमत हैं कि किसी भी सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन न करने वाले किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ परमादेश की याचिका नहीं है। अनुच्छेद 227 का दायरा अनुच्छेद 226 से भिन्न है।

29. तदनुसार, हम निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर देते हैंः

29.1. दीवानी अदालत के न्यायिक आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं।

29.2. अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार से अलग है।

29.3. सूर्य देव राय [सूर्य देव राय बनाम राम चन्द्र राय, (2003) 6 एस. सी. सी. 675] में विपरीत मत को उलट दिया गया है।"

20. अतः जब उच्च न्यायालय के समक्ष वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध कोई याचिका दायर की जाती है तो उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करता है। इसलिए, यह पूरी तरह से असंगत है कि याचिका को एक याचिका आवेदन के रूप में शीर्षक दिया गया था.यह देखा जा सकता है कि कतिपय उच्च न्यायालयों में अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका का शीर्षक रिट याचिका, कतिपय अन्य उच्च न्यायालयों में पुनरीक्षण याचिका और कतिपय अन्य उच्च न्यायालयों में विविध याचिका है। तथापि, पारित किए गए आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परंतुक को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने केवल अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किया। उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार सिर्फ वक्फ न्यायाधिकरण द्वारा उल्लेखित निष्कर्ष की शुद्धता, वैद्यता या उपयुक्तता की

जाँच करने तक नियंत्रित है। उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 83 की उपधारा (9) के परंतुक के अधीन प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है।

21. हम श्री सान्याल द्वारा उठाए गए तर्क में योग्यता पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष दायर याचिका के शीर्षक का नामकरण महत्वहीन है। अहमदाबाद नगर निगम बनाम बेन हीराबेन मणिलाल वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सरकार द्वारा जिस शक्ति के अधीन कार्रवाई की गई थी उसके गलत संदर्भ से कार्रवाई स्वतः दूषित नहीं होगी, यदि उसे किसी अन्य शक्ति के अधीन न्यायोचित ठहराया जा सकता है जिसके द्वारा सरकार उस कार्य को विधिपूर्ण रूप से कर सकती है। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:

> “5. .....यह अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है कि किसी शक्ति का प्रयोग, यदि वास्तव में कोई शक्ति है, तो उस शक्ति के प्रयोग की वैधता के मुद्दे पर किसी अधिकारिता के लिए संदर्भित होगा, जो उसे वैधता प्रदान करती है, न कि ऐसी अधिकारिता के लिए जिसके तहत वह अमान्य होगी, हालांकि धारा का उल्लेख नहीं किया गया था, और विभिन्न उपबंधों के एक अलग या गलत खंड का उल्लेख किया गया था। इस संबंध में पीताम्बर वजीरशेट बनाम धोंदु नवलपा [आईएलआर (1888) 12 बोम 486,489] में टिप्पणियों को देखें। इस संबंध में एल. हजारी मल कुठियाला बनाम आईटीओ, स्पेशल सर्कल, अंबाला कैंट के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियां भी देखें। [एयर 1961 एस सी 200:(1961) 1 एससीआर 892:(1961) 41 Itr. 12,16:(1961) 1 एससीजे 617] इस मुद्दे को इस न्यायालय द्वारा हुकुमचंद मिल्स लि. बनाममध्य प्रदेश राज्य [एआईआर 1964 एससी 1329:(1964) 6

एससीआर 857:(1964) 52 इतरा 583:(1964) 1 एस. सी. जे. 561] जहां यह पाया गया कि यह अच्छी तरह से तय किया गया था कि सरकार द्वारा जिस शक्ति के तहत कार्रवाई की गई थी, उसके बारे में गलत संदर्भ से उस कार्रवाई को स्वतः दूषित नहीं किया जा सकता है, यदि इसे किसी अन्य शक्ति के तहत उचित ठहराया जा सकता है जिसके तहत सरकार कानूनी रूप से वह कार्य कर सकती है। नानी गोपाल विश्वास बनाम हावड़ा नगरपालिका [ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 141:1958 एससीआर 774,779:1958 एससीजे 297:1958 क्री एल जे 271)।"

22. बाद में, पेप्सी फूड्स लिमिटेड में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जिस नामकरण के तहत याचिका दायर की जाती है वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह न्यायालय को अपनी अधिकारिता का उपयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है। यदि न्यायालय यह पाता है कि अपीलकर्ता ऐसा नहीं कर सकता अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का अवलंब ले सका, तो न्यायालय निश्चित रूप से अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका के रूप में विचार कर सकता है। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:

"26. जिस नाम के तहत याचिका दायर की जाती है वह काफी प्रासंगिक नहीं है और यह अदालत को अपनी अधिकारिता का उपयोग करने से नहीं रोकता है जो अन्यथा उसके पास है जब तक कि निर्धारित विशेष प्रक्रिया न हो जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि वर्तमान मामले जैसे मामले में अदालत को पता चलता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के तहत अपनी अधिकारिता का उपयोग नहीं कर सकते हैं, तो अदालत निश्चित रूप से अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत याचिका पर विचार कर सकती है। तथापि, यह

ध्यान से नहीं देखा जाना चाहिए कि पुनरीक्षण और अपील संहिता में उपबंध विद्यमान हैं किंतु तत्काल राहत के लिए कुछ समय संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का आश्रय अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की जा सकने वाली कुछ गंभीर त्रुटियों को सुधारने के लिए लिया जा सकता है। वर्तमान याचिका हालांकि अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय में दायर की गई है, लेकिन इसे संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अच्छी तरह से माना जा सकता है।"

23. इसलिए, अनुच्छेद 226 के अधीन एक प्रस्तुत की गई याचिका उच्च न्यायालय को अधिनियम और/या संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने से नहीं रोकेगी। न्यायाधिकरण द्वारा किसी विवाद के निवारण की शुद्धता, वैधता और औचित्य की जांच करने का उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालय के पास आरक्षित है। अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका या अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में कार्यवाही का नामकरण पूरी तरह से अप्रासंगिक महत्वहीन और महत्वहीन है।

24. श्री सान्याल द्वारा सर हुकमचंद मन्नालाल एंड कंपनी में उल्लिखित यह निर्णय कि एचयूएफ का कोई सदस्य अजनबी के साथ संविदा करने के लिए सक्षम है, उठाए गए इस तर्क का समर्थन नहीं करता है। यह माना गया है कि यदि एचयूएफ का कोई सदस्य किसी अजनबी के साथ अनुबंध करता है, तो वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में ऐसा करता है। यह निम्नलिखित रूप में आयोजित किया गयाः

"5. भारतीय संविदा अधिनियम किसी हिन्दू अविभाजित परिवार के सदस्यों पर परस्पर या किसी अजनबी के साथ संविदा करने के मामले में कोई अयोग्यता नहीं लगाता है। हिन्दू अविभाजित परिवार के किसी सदस्य को संविदा करने की वैसी ही स्वतंत्रता है जैसी किसी अन्य व्यक्ति को हैःयह

भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा प्रदत विधि एवं सीमा तक प्रतिबंधित है। भागीदारी भागीदारी अधिनियम की धारा 4 के तहत उन व्यक्तियों के बीच संबंध है जो सभी या उनमें से किसी के द्वारा चलाए जा रहे व्यवसाय के लाभों को साझा करने के लिए सहमत हुए हैंःयदि ऐसा संबंध विद्यमान है तो यह केवल इसलिए अविधिमान्य नहीं होगा कि दो या अधिक व्यक्ति जिन्होंने इस प्रकार सहमति व्यक्त की है वे हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के सदस्य हैं।”

25. इस न्यायालय ने पी. के. पी. एस. पिचप्पा चेट्टियार एवं अन्य बनामचोकलिंगम पिल्लई एवं अन्य मामले में रिपोर्ट किये गए निर्णय के अनुमोदन से उद्घत किया है- जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब एक संयुक्त परिवार का प्रबंधक एक साझेदारी में प्रवेश करता है, तो वह खुद अपने परिवार के अन्य सदस्य को भागीदार के रूप में नहीं बनाता है। न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित कियाः

"उनके लार्डशिप्स की राय में, अब विचाराधीन मामले के संबंध में कानून को सही ढंग से मेन्स हिंदू लॉ (9 वां संस्करण) पृष्ठ 398 पर कहा गया है, जो इस प्रकार हैः"

“जहां संयुक्त परिवार का कोई प्रबंध सदस्य किसी अजनबी के साथ साझेदारी में प्रवेश करता है, वहां परिवार के अन्य सदस्य स्वतः व्यवसाय में भागीदार नहीं बनते हैं ताकि उन्हें भारतीय संविदा अधिनियम में परिभाषित भागीदार के सभी अधिकारों और दायित्वों को दिया जा सके। ऐसी स्थिति में परिवार एक इकाई के रूप में भागीदार नहीं बनता है, बल्कि उसके सदस्यों में से केवल ऐसे सदस्य ही उसके साथ संविदात्मक संबंध बनाते हैं जो वास्तव में अजनबी के साथ संविदात्मक संबंध बनाते हैं। 18 अजनबीःसाझेदारी अधिनियम द्वारा शासित होगी। इस अनुच्छेद में भारतीय संविदा अधिनियम का उल्लेख किया गया है, जो इस मामले के तथ्यों पर लागू होगा। यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त अधिनियम में भागीदारी का उल्लेख करने वाली

धाराओं को निरस्त कर दिया गया है और अब ये भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 में सन्निहित हैं। "इसलिए, यह मानते हुए कि विरप्पा 1908 में अपने संयुक्त हिंदू परिवार के प्रबंधक थे, उस वर्ष चेट्टीज के साथ साझेदारी में उनका प्रवेश" "अपने परिवार के अन्य सदस्यों को स्वतः" "अपने परिवार के भागीदार नहीं बनाएगा।”

26. अगला प्रश्न यह है कि क्या श्री देवेन्द्र प्रसाद सिन्हा संयुक्त परिवार कारोबार चला रहे थे और/या क्या कब्जे के समर्पण का कार्य संयुक्त हिन्दू परिवार कारोबार का था या केवल किरायेदारी के अभ्यर्पण का या कर्ता के रूप में अभिधृति का अभ्यर्पण संयुक्त हिन्दू परिवार के लाभ के लिए था।

27. वादी ने दलील दी है कि जब वादी के पिता सेवा में शामिल हुए, तो दुकान नौकरों के माध्यम से चलाई जा रही थी और वादी ने 1988 से होटल चलाना शुरू कर दिया था.इसके बाद आवक के प्रबंधन और लेखा को लेकर विवाद पैदा हो गया और होटल कई वर्षों तक बंद रहा। वादी ने निम्नानुसार अभिवचन किया हैः

> "4. जब वादी के दादा बीमार हो गए, तो दुकान की देखभाल उनके सबसे बड़े पुत्र सुरेंद्र कुमार द्वारा की जा रही थी और सुरेंद्र कुमार और ने देवेंद्र प्रसाद सिन्हा के नाम से उन्हें दी गई रसीद के तहत वक्फ बोर्ड को किराया देना शुरू कर दिया, जो सभी सुरेंद्र कुमार के साथ हैं, बाद में जब सुरेंद्र कुमार सेवा में शामिल हुए, तो दुकान को सेवक के माध्यम से चलाया जाता है, लेकिन बाद में 1988 से वादी द्वारा होटल चलाना शुरू कर दिया गया और उसके बाद प्रबंधन और आय के लेखांकन को लेकर विवाद पैदा हो गया और इस तरह होटल बंद हो गया और कई वर्षों तक बना रहा।"

28. उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संयुक्त परिवार का अस्तित्व 2.4.1949 को जारी किए गए राशन कार्ड से और 1947-1955 की अवधि के लिए किराए के

भुगतान से पता चलता है कि परिसर संयुक्त परिवार को दिए गए थे। उच्च न्यायालय ने किरायेदारी के आत्मसमर्पण को भी इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यह अन्य सह-भागीदारी की सहमति के बिना था। यह निम्नलिखित रूप में आयोजित किया गयाः

> "37 राम शरण राम की मृत्यु के बाद, राम सेवक राम संयुक्त हिंदू परिवार का कर्ता बन गया, जिसके प्रतिवादी नंबर 1, उसके तीन बेटे सुरेंद्र कुमार, वादी के पिता, दिलीप कुमार, प्रतिवादी नंबर 2, सुरेश कुमार, वादी और उसके तीन भाई सदस्य थे। सरकार के सचिव द्वारा सरकार के आदेश के तहत जारी राशन कार्ड प्रदर्श-9 ए दिनांक 02.12.1949 के अवलोकन से संयुक्त परिवार का अस्तित्व स्थापित किया गया है, जिसमें राम सेवक राम कर्ता थे। राम शरण राम की मृत्यु के बाद, राम सेवक राम ने संयुक्त परिवार के मामलों का प्रबंधन किया, जिसमें सूट परिसर में होटल व्यवसाय भी शामिल था, जिसे वक्फ एस्टेट के मुतावल्ली द्वारा संयुक्त परिवार को किराए पर दिया गया था, जैसा कि बिहार राज्य सुन्नी वक्फ बोर्ड द्वारा मुतावल्ली मोहम्मद के माध्यम से 46 किराया रसीदों (प्रदर्शनी-8 से 8/45) के अवलोकन से स्पष्ट है।
>
> xxx xxx xxx
>
> 43. प्रतिवादी नं. १ द्वारा प्राप्त किराया रसीद, जल बोर्ड रसीद और बिजली बिल रसीद, संयुक्त परिवार के मूल किरायेदार अर्थात् राम सेवक राम की मृत्यु के बाद हैं, जिससे प्रतिवादी नं. १ संयुक्त परिवार के अन्य सहकर्मियों के साथ किरायेदारी के लिए कामयाब हुआ.बाद की प्राप्तियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि किरायेदारी केवल प्रतिवादी नं. १ के पक्ष में बनाई गई है और दूसरे राम सेवक रामके वंशज / उत्तराधिकारी की उपेक्षा की गई है। इस संबंध में प्रतिवादी नं. ४ के बयान का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है, जिसने स्वयं को डी डब्लू २ पैराग्राफ २४ के रूप

में जांच की, जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वक्फ बोर्ड में देवेंद्र बाबू, प्रतिवादी नं. १ के पक्ष में कोई किरायानामा निष्पादित नहीं किया गया है.

44. प्रतिवादियों द्वारा दिनांक 31.5.96 के आत्मसमर्पण पत्र के संबंध में दिया गया मामला भी अस्वीकार किए जाने के लिए उपयुक्त है क्योंकि हिंदू अविभाजित परिवार के कर्ता राम सेवक राम की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी नं. 1 हिंदू अविभाजित परिवार का कर्ता बन गया और हिंदू कानून के सिद्धांतों के अनुसार हिंदू अविभाजित परिवार के अन्य सहदायिकों की सहमति के बिना प्रतिवादी संख्या-1 किराए के परिसर को आत्मसमर्पण करने का हकदार नहीं था।

45. मेरे उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं है कि वाद परिसर राम सेवक राम को उसकी मृत्यु तक अर्थात् जनवरी, 1960 में कथित परिसर में संयुक्त पारिवारिक होटल व्यवसाय करने के लिए दिया गया था, जिसके बाद प्रतिवादी नं. 1 परिवार का कर्ता बन गया और संयुक्त परिवार का गठन करने वाले अपने बेटों और पोतों के साथ वाद परिसर सहित संयुक्त परिवार के व्यवसाय में कामयाब हो गया, इस प्रकार, संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों की सहमति के बिना 31 मई, 1996 को तथाकथित आत्मसमर्पण पत्र के माध्यम से वक्फ संपदा के मुतवल्ली के पक्ष में किराएदारी को आत्मसमर्पण नहीं कर सकता था।"

29. इस प्रकार, भले ही किसी पुरुष सदस्य ने किराए पर परिसर लिया हो, वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में किरायेदार है, न कि इस बात के किसी सबूत के अभाव में कि कर्ता संयुक्त हिंदू परिवार के लिए और उसकी ओर से व्यवसाय कर रहा था। उच्च न्यायालय ने 2 दिसंबर, 1949 को जारी किए गए राशन कार्ड के अवलोकन से उस संयुक्त परिवार के अस्तित्व की कल्पना की है जिसके राम सेवक राम को कर्ता कहा गया था। हिंदू संयुक्त हिंदू

परिवार को केवल राशन कार्ड के आधार पर अस्तित्व में नहीं माना जा सकता है - जबतक इस बात का सबूत न हो कि संयुक्त हिंदू परिवार की निधियां किराए के परिसर में व्यवसाय में निहित थीं।

30. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राम अवलाम्ब में यह अभिनिर्धारित किया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम द्वारा सृजित अधिकारों में हिन्दू विधि, या मुस्लिम विधि, या किसी अन्य स्वीय विधि की धारणाओं का आयात नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने निम्नरुप में अभिनिर्धारित किया-

> "8. हिन्दू संयुक्त परिवार अनादि काल से अस्तित्व में हैं और आज भी अस्तित्व में हैं। तथापि, यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक हिन्दू संयुक्त परिवार के पास संयुक्त पारिवारिक संपत्ति भी हो। जहां कोई संपत्ति पैतृक है या किसी संयुक्त हिंदू परिवार के सभी सदस्यों द्वारा अर्जित की जाती है या संयुक्त परिवार के केवल एक सदस्य द्वारा अर्जित किए जाने के बाद इसे सामान्य स्टॉक में फेंक दिया जाता है तो इसे संयुक्त पारिवारिक संपत्ति या सहदायिकी संपत्ति माना जाता है। जब तक विभाजन नहीं होता या परिवार का केवल एक सदस्य बचा रहता है, बिना किसी पुरुष मुद्दे के, सहदायिकी संपत्ति परिवार के पास रहती है और किसी एक सदस्य की मृत्यु होने पर केवल उसका हित जीवित सह-दायित्वकर्ताओं पर न्यागत होता है। केवल परिवार के कर्ता या प्रबंधक को कानूनी आवश्यकता के लिए या संपत्ति के लाभ के लिए संपत्ति के हस्तांतरण का अधिकार है।
>
> 45. अतः, हमारे निष्कर्षों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हैः-(1) जहां किसी संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्यों के पास किसी अभिधारी में भूमिधारी अधिकार हैं, वहां वे संयुक्त अभिधारियों के रूप में नहीं बल्कि समान

अभिधारियों के रूप में हैं। उस स्थिति को निर्धारित करने के लिए हिंदू कानून की अवधारणाओं को लागू नहीं किया जा सकता है।

(2) जहां किरायेदारों के कुछ वर्गों में, जैसे स्थायी किरायेदारों में, किरायेदार का हित सीमित अर्थों में विरासत योग्य और हस्तांतरणीय दोनों था और इस तरह की किरायेदारी को अधिनियम के लागू होने से पहले संयुक्त पारिवारिक संपत्ति या सहदायिकी संपत्ति के रुप में वर्णित किया जा सकता है, 1951 के अधिनियम 1 के प्रवृत्त होने के पश्चात् स्थिति बदल गई। इसके पश्चात् प्रत्येक भूमिधर का हित, जो अधिनियम में उपबंधित उत्तराधिकार के आदेश के अनुसार ही विरासत में मिलता है और स्वयं अधिनियम में उल्लिखित के अलावा किसी अन्य प्रतिबंध के बिना हस्तांतरणीय है, को पृथक इकाई समझा जाना चाहिए।

(3) संयुक्त हिन्दू परिवार के प्रत्येक सदस्य को अंतरण के अधिकार के प्रयोग के लिए और मृतक सदस्य के भूमिधारी हित के अंतरण के प्रयोजनों के लिए एक पृथक इकाई माना जाना चाहिए।

(4) भूमिधारी भूमि में अपने हित के संयुक्त हिन्दू परिवार के प्रत्येक सदस्य के अंतरण का अधिकार अधिनियम की धारा 152 द्वारा ही नियंत्रित होता है और कोई अन्य निर्बन्धन नहीं है। सहदायिकी भूमि के हस्तांतरण पर प्रतिबंध से संबंधित हिंदू कानून के प्रावधान, जैसे कानूनी आवश्यकता की मौजूदगी, लागू नहीं होते हैं।"

31. इस प्रकार हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने कानून और तथ्य की एक बुनियादी त्रुटियां की है कि किराया या राशन कार्ड का भुगतान साबित करता है कि किरायेदार एक संयुक्त हिंदू परिवार व्यवसाय के रूप में व्यवसाय कर रहा था। यदि संपत्ति का अधिग्रहण पुरुष सदस्य द्वारा किया गया है या इसे संयुक्त हिंदू परिवार माना गया है तो हिंदू संयुक्त पारिवारिक संपत्ति की अवधारणा की जा सकती है। लेकिन इस तरह का कोई

भी अवधारणा किसी किराएदार परिसर में किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली व्यावसायिक गतिविधि से जुड़ा नहीं है।

32. अभिलेख पर तथ्यों के अवलोकन से पता चलेगा कि यह वादी के परदादा द्वारा की गई किरायेदारी की संविदा थी। यहां तक कि अगर प्रपितामह होटल व्यवसाय से होने वाली आय से अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे, तो वह भी अपने आप परिवार के अन्य सदस्यों को होटल व्यवसाय में सहदायिकी न बना पायेगा। यह किरायेदारी का अनुबंध था जो वादी के दादा को विरासत में मिला था, जिन्होंने बाद में इसे वक्फ बोर्ड के पक्ष में आत्मसमर्पण कर दिया था। किराएदारी एक व्यक्तिगत अधिकार था जो वादी के दादा को दिया गया था जो इसे मकान मालिक को सौंपने के लिए सक्षम था। उच्च न्यायालय ने यह कहकर कानून में स्पष्ट रूप से गलती की है कि चूंकि दादा एक किरायेदार थे, इसलिए किरायेदारी एक संयुक्त परिवार की संपत्ति है। किरायेदारी की संविदा संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय की तुलना में एक स्वतंत्र संविदा है।

33. वास्तव में, वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य या तो राम सेवक राम द्वारा या वादी के दादा द्वारा किराए का भुगतान है.किराए का इस तरह का भुगतान इस तथ्य का संकेत नहीं है कि होटल व्यवसाय संयुक्त हिंदू परिवार द्वारा किया गया था.इस न्यायालय ने जी. नारायण राजू (मृत) के रूप में उनके कानूनी प्रतिनिधि द्वारा बनाम जी. चामराजू और अन्य, वाले मामले के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा कोई मामला नहीं है कि हिन्दू विधि के अधीन यह उपधारणा कि संयुक्त परिवार के किसी सदस्य के नाम पर किया गया कारोबार संयुक्त कारोबार है, भले ही वह सदस्य संयुक्त परिवार का प्रबंधक हो, जब तक कि यह दर्शित न किया जा सके कि सहदायिकी के हाथ में कारबार संयुक्त परिवार संपत्ति या संयुक्त परिवार निधि की सहायता से बढ़ा है या कारोबार की आय संयुक्त परिवार संपदा के साथ मिश्रित की गई थी। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:

3. ....यह सुस्थापित है कि हिन्दू विधि के अधीन ऐसी कोई उपधारणा नहीं है कि संयुक्त परिवार के किसी सदस्य के नाम पर किया गया कारबार संयुक्त कारबार है, चाहे वह सदस्य संयुक्त परिवार का प्रबंधक ही क्यों न हो। जब तक यह दर्शित नहीं किया जा सकता कि सहदायिकी के हाथों में कारोबार संयुक्त पारिवारिक संपत्ति या संयुक्त पारिवारिक निधियों की सहायता से बढ़ा है या कारबार की आय संयुक्त पारिवारिक संपदा के साथ मिश्रित की गई है, तब तक कारबार स्वतंत्र और पृथक् रहता है। ...

6. ... यह हिंदू विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि जो संपत्ति मूल रूप से स्व-अर्जित थी, वह संयुक्त संपत्ति बन सकती है, यदि इसे सहदायिकी द्वारा उस पर सभी अलग-अलग दावों को छोड़ने के इरादे से स्वेच्छा से संयुक्त स्टॉक में फेंक दिया गया हो। न्यायिक समिति द्वारा इस सिद्धांत को बार-बार मान्यता दी गई है (देखें हुरपुरशाद बनाम शीयो दयाल, (1876) 3 इंड ऐप 259 (पीसी) और लाल बहादुर बनाम कन्हैया लाल, (1907) 34 इंड ऐप 65 (पीसी)। लेकिन सवाल यह है कि क्या सहदायिकी ने ऐसा किया है या नहीं, यह पूरी तरह से तथ्य का सवाल है जिसका निर्णय मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए.यह स्थापित किया जाना चाहिए कि सहदायिकी की ओर से अपने अलग अधिकारों को छोड़ने का स्पष्ट इरादा था और इस तरह का इरादा केवल उन कार्यों से नहीं निकाला जाएगा जो दया या स्नेह से किए गए हो सकते हैं (लाला मुद्दुन गोपाल बनाम खीखिन्दु कोएर, (1891) 18 इंड ऐप 9 (पीसी) में निर्णय देखें)। उदाहरण के लिए, नैना पिल्लई बनाम दैवनई अम्मल, ए. आई. आर. 1936 मद्रास 177 में जहां दस्तावेजों की एक श्रृंखला में स्व-अर्जित संपत्ति को पैतृक संयुक्त पारिवारिक संपत्ति के रूप में वर्णित किया गया था, पर्याप्त नहीं था लेकिन सहदायिकी का आशय अपनी अलग संपत्ति के रूप में अपने अधिकार के पूर्ण ज्ञान के साथ अपने दावों को

माफ करने के लिए दिखाया जाना चाहिए। ध्यान में रखने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी हिन्दू सहदायिकी की पृथक् सम्पत्ति उसकी पृथक् सम्पत्ति नहीं रह जाती और वह संयुक्त कुटुम्ब या पूर्वजों की सम्पत्ति की विशेषताओं को प्राप्त कर लेती है, केवल अपने संयुक्त कुटुम्ब या पूर्वजों की सम्पत्ति के साथ शारीरिक रूप से मिलने-जुलने के कार्य से नहीं, बल्कि अपनी इच्छा और आशय से, एक पृथक् सम्पत्ति के रूप में उसमें अपने विशेष अधिकार का परित्याग या समर्पण करके। किसी भी व्यक्ति के इरादे को उसकी बातों से या उसके कार्यों और आचरण से ही पता लगाया जा सकता है। जब अपनी अलग संपत्ति के संबंध में उनका इरादा शब्दों में व्यक्त नहीं किया जाता है, तो हमें उनके कार्यों और आचरण में इसकी तलाश करनी चाहिए। लेकिन हमारा इरादा यही है कि हमें कार्य और आचरण इरादे के साक्ष्य से अधिक कुछ नहीं होने की वजह से हर मामले में अवश्य खोजना चाहिए। ... (जोर दिया जाता है)

34. इस न्यायालय ने पी.एस. साईराम एवं एक अन्य बनाम पी.एस. रामाराव पी.एस. एवं अन्य मामले केउपरोक्त निर्णय के अनुसरण में अभिनिर्धारित किया कि जहां तक स्थावर संपत्ति का संबंध है, यह उपधारणा होगी कि यह संयुक्त परिवार से संबंधित है, बशर्ते यह साबित हो जाए कि संयुक्त परिवार के पास इसके अधिग्रहण के समय पर्याप्त केंद्र था, लेकिन ऐसी कोई उपधारणा किसी व्यवसाय पर लागू नहीं की जा सकती है। यह निम्नलिखित रूप में आयोजित किया गयाः

"7. वर्तमान अपील में महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या प्रतिवादी नं. 1 द्वारा संचालित किया गया व्यवसाय उसका अलग व्यवसाय था या वह संयुक्त परिवार का था, जिसमें वह और उसके बेटे शामिल थे। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां तक स्थावर संपत्ति का संबंध है, यदि वह व्यक्तिगत सदस्य के नाम पर है, तो यह

उपधारणा होगी कि वह संयुक्त परिवार से संबंधित है, बशर्ते यह साबित हो जाए कि संयुक्त परिवार के पास इसके अधिग्रहण के समय पर्याप्त रुप से केंद्रित था, लेकिन ऐसी कोई उपधारणा व्यवसाय पर लागू नहीं की जा सकती

35. इस प्रकार, केवल परदादा द्वारा या वादी के परदादा द्वारा किराया का भुगतान करने से यह उपधारणा नहीं बनती है कि यह एक संयुक्त हिंदू पारिवारिक व्यवसाय था। उच्च न्यायालय ने बिना किसी कानूनी या तथ्यात्मक आधार के ऐसा करने में स्पष्ट रूप से कानून की गलती की है।

36. भले ही देवेंद्र प्रसाद सिन्हा को किराए के परिसर में होटल व्यवसाय करते समय संयुक्त हिंदू परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता है, किराएदारी के आत्मसमर्पण के लिए कर्ता अधिनियम के बारे में सवाल संयुक्त हिंदू परिवार के लाभ के लिए था। मुल्ला द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ हिन्दू विधि के 22 वें संस्करण के पारा 240 में संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता की शक्तियों का वर्णन किया गया हैः

"सहदायिकी संपत्ति के प्रबंधक द्वारा कानूनी आवश्यकताओं के लिए हस्तांतरण

(1) संयुक्त हिंदू परिवार के प्रबंधक की संयुक्त पारिवारिक संपत्ति को अलग करने की शक्ति न्यायिक समिति द्वारा परिभाषित शिशु वारिस के लिए प्रबंधक की शक्ति के समान है।

(2) संयुक्त हिन्दू परिवार के प्रबंधक को मूल्य, संयुक्त परिवार संपत्ति के लिए हस्तांतरण करने की शक्ति है जिससे कि संपत्ति में वयस्क और अवयस्क दोनों सहदायिकों के हितों को आबद्ध किया जा सके, बशर्ते कि हस्तांतरण विधिक आवश्यकता के लिए या संपदा के फायदे के लिए किया गया हो। एक प्रबंधक (पिता के बिना) अवयस्क के पिता (या दादा) के पूर्ववर्ती ऋण को पूरा करने के लिए

अवयस्क सहदायिकी के हिस्से को भी अलग कर सकता है जब उसके लिए कोई अन्य युक्तियुक्त मार्ग खुला नहीं है (धर्मराज सिंह बनाम चंद्रशेखर राव, (1942) नाग 214)। अलगाव को विधिमान्य करना आवश्यक नहीं है कि वयस्क सदस्यों की अभिव्यक्त सहमति प्राप्त की गई हो।

सूरज बंसी कोएर बनाम शिव प्रसाद, (1879) 6 आईए 88,101, न्यायिक समिति ने कहा कि यह स्पष्ट रूप से तय नहीं किया गया था कि क्या किसी प्रबंधक द्वारा कानूनी आवश्यकता के लिए कोई अलगाव किया गया है, लेकिन वयस्क सहदायिकों की स्पष्ट सहमति के बिना, अलगाव उन पर बाध्यकारी है। तथापि, उसी अधिकरण के बाद के निर्णयों में यह मत व्यक्त किया गया है कि यदि विधिक आवश्यकता सिद्ध हो जाती है तो वयस्क सहदायिकों की अभिव्यक्त सहमति आवश्यक नहीं है (साहू राम बनाम भूप सिंह, एआईआर 1917 पीसी 61)। संयुक्त परिवार व्यवसाय के लिए प्रबंधक द्वारा अलगाव के बारे में।

यदि ऐसा कोई लेन-देन किसी प्रबंधक द्वारा कानूनी आवश्यकता के लिए किया गया है, तो इसे परिवार की ओर से किया गया माना जाएगा और यह उसे बाध्य करेगा। स्थिति इस तथ्य से बदतर नहीं होती है कि एक कनिष्ठ सदस्य लेन-देन में शामिल होता है और उसके द्वारा शामिल होना उसकी आवश्यकता के कारण व्यर्थ हो जाता है (राधा कृष्णदास बनाम कालूराम, एआईआर 1967 एससी 574)।"

37. वादी का अभिवचन यह है कि होटल कई वर्षों से बंद था। इसलिए, मासिक किराया का भुगतान करने की देनदारी निरंतर कर्ता-देवेंद्र प्रसाद सिन्हा पर प्रोद्भूत होती है। प्रश्न यह है कि क्या, इन परिस्थितियों में, होटल के संचालन की गतिविधियों के बंद होने के कारण, किरायेदारी के आत्मसमर्पण का कार्य वास्तव में संयुक्त परिवार के लाभ के लिए है। उच्च न्यायालय ने पाया कि आत्मसमर्पण पत्र विश्वसनीय या मान्य नहीं था। आत्मसमर्पण

पत्र के निष्पादक ने ऐसे आत्मसमर्पण पत्र को लिखित बयान में और डीडब्ल्यू-5 के रूप में गवाह के रूप में पेश होते हुए स्वीकार किया है। मुतावल्ली मोहम्मद सलीमुद्दीन ने लिखित बयान में और कठघरे में डीडब्ल्यू-10 के रूप में पेश होते हुए आत्मसमर्पण पत्र को भी स्वीकार कर लिया है। केवल इस कारण से कि अनुवादित प्रतिलिपि के हस्ताक्षर उर्दू प्रतिलिपि के साथ मेल नहीं खाते हैं, समर्पण पत्र को अविश्वसनीय मानने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि अनुवाद गलत हो सकता है, लेकिन निष्पादक या स्वीकार्य द्वारा दस्तावेज की शुद्धता पर विवाद नहीं किया गया है। कथित दस्तावेज़ को वादी के बयान के आधार पर अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता था जो इस तरह के लेन-देन का एक पक्ष नहीं है.यह कहना एक बात है कि दस्तावेज अविश्वसनीय है और दूसरी बात यह है कि दस्तावेज वादी को बाध्य नहीं करता है। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि यह दस्तावेज वक्फ बोर्ड द्वारा वैध रूप से साबित और स्वीकार किया गया था। इसलिए, किराएदारी के आत्मसमर्पण का कार्य संयुक्त हिंदू परिवार के लाभ के लिए था।

38. इस प्रकार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय का आदेश ऊपर अभिलिखित कारणों से टिकाऊ नहीं है। नतीजतन, वर्तमान अपील की अनुमति दी जाती है। उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया जाता है और वक्फ न्यायाधिकरण के आदेश को लागत के बारे में बिना किसी आदेश के बहाल कर दिया जाता है।

निधि जैन

अपील की अनुमति